1. क्या भारत सकल घरेलू उत्पाद और कुल रोजगार में कृषि के भाग से संबंधित असंतुलन ढांचे के कारण बड़े देशों के बीच में अलग है ? आप सभी जानते हैं, भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का भाग 16–17 प्रतिशत है, किंतु अभी भी देश के कुल रोजगार का आधा हिस्सा कृषि पर निर्भर है। यह असंतुलन कितना गंभीर और समस्याजनक है ? अन्य कई देशों में भी जिनमें सकल घरेलू उत्पाद बढ़ा है वहां कुल रोजगार में कृषि का भाग कम हुआ है। किंतु ऐसा भारत में क्यों नहीं हुआ ?

   मैं नहीं जानता कि सकल घरेलू उत्पाद या कुल रोजगार में भारतीय कृषि की स्थिति किस तरह से असामान्य है। दिए गए आंकड़े उन देशों में भी अलग नहीं हैं जिन देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर भारत जैसा है। किंतु, भारत में भी कुल रोजगार में कृषि का भाग कम हो रहा है। भारत में असामान्य यह है कि कुल रोजगार में अन्य सेवाओं का भाग अधिक है और निर्माण क्षेत्र में कम है। इसमें कोई शक नहीं है कि भारत में भी कृषि क्षेत्र में रोजगार का भाग और कम होता यदि निर्माण क्षेत्र में तेजी से वृद्धि होती, विशेषकर श्रमिक आधारित उद्योग क्षेत्र में। आज कुल रोजगार में कृषि के भाग को असामान्य रूप में वे लोग देख सकते हैं जो भारत को मध्यम आय वर्ग का देश मानते हैं। यह भ्रम सामान्य है किंतु तथ्य यह है कि भारत अभी भी एक निर्धन देश है यद्यपि हाल ही के वर्षों में आर्थिक वृद्धि दर काफी बढ़ी है।

2. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) को कृषि मजदूरी की बढ़ती लागत के लिए जिम्मेवार ठहराया जाता है। क्या यह सच है, यदि 'हाँ' तो यह एक क्या वांछनीय घटना है ?

   साक्ष्यों से पता चलता है कि कृषि मजदूरी की वृद्धि दर बढ़ी है जो नरेगा से पहले, पिछले पांच वर्ष में शून्य थी, वह अब 3 या 4 प्रतिशत वार्षिक हो चुकी है, अर्थात अगले पांच वर्षों में और बढ़ सकती है। महिला मजदूरी की दर पुरूष मजदूरी से अधिक बढ़ी है। मेरा मानना है कि ये विकास स्वागत योग्य है। आर्थिक वृद्धि का अर्थ यह नहीं कि निर्धन लोगों का रहन–सहन सुधरा है जब तक कि उनकी वास्तविक मजदूरी न बढ़े। यह भी याद रखें कि अधिकतम किसान अंशकालिक मजदूर भी होते हैं अतः उन्हें अधिक आय भी मिल जाती है।

3. यदि नरेगा का प्रमुख प्रयोजन रोजगार अवसर बढ़ाना है, तो क्या यह बेहतर नहीं होगा कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत कार्य तब ही दिया जाए जब फसल का मौसम न हो अर्थात जब बुआई और कटाई का कार्य न चल रहा है ? इससे वर्ष में केवल तीन महीने ही नरेगा योजना के अंतर्गत काम उपलब्ध होगा (यह फसल से फसल और क्षेत्र से क्षेत्र भिन्न होगा)।

   वास्तव में नरेगा अधिकतम राज्यों में पहले से ही इस प्रकार से कार्य कर रहा है। इसमें मौन सहमति ऐसी है कि व्यस्त मौसम के पश्चात कार्य आरंभ किए जाएं। किंतु, किसी भी मामले में व्यस्त मौसम के समय अधिकतम मजदूरों के लिए नरेगा एक आकर्षक रोजगार का विकल्प नहीं है क्योंकि उस समय बाजार में मजदूरी अधिक होती है और नरेगा से वेतन मिलने की तुलना में वहां शीघ्र वेतन मिल जाता है।

4. आपने देखा होगा कि नरेगा 'लोक–सहायक कानून है किंतु लोक–विरोधी पद्धति से लागू होता है'। कृप्या स्पष्ट करें। क्या आप समझते हैं कि एक ऐसी नीति बनानी चाहिए जिस पर कोई पद्धति लागू न हो और लागू करने की पद्धति को दोष दिया जाए न कि नीति को ?

सच यह है कि सामान्यतः पद्धति उदासीन होती है और निर्धन लोगों की सहायता के लिए होती है किंतु आप इसे आम रिक्शा वाले को नहीं समझा सकते। वह इस बारे में भली–भांति जानता है कि पुलिस, नगर निगम और अन्य सरकारी एजेंसियां उसे प्रतिदिन कितना परेशान करती हैं। इसी प्रकार से एक सामान्य नरेगा का मजदूर भी जानता है कि ग्राम पंचायत सचिव और ब्लॉक विकास अधिकारी वहां विद्यमान नहीं रहते कि वे यह सुनिश्चित कर सकें कि मजदूरों को मजदूरी समय पर मिल रही है। निःसंदेह यदि आप सरकारी दस्तावेजों से नरेगा के बारे में जानना चाहते हैं तो उसमें निर्धनों के प्रति सहानुभूति दर्शायी गई है और आप कुछ भिन्न महसूस करेंगे। इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि सरकारी कार्यालयों में भी कई अच्छे लोग हैं। किंतु, लालफीताशाही की सामान्य श्रेणी के और अन्य लोग ऐसे हैं कि वे अपने हित में कार्य करना चाहते हैं और पीड़ित लोगों को ही उनकी दुर्गति के लिए जिम्मेवार ठहराते हैं।

आपके दूसरे प्रश्न के भाग के संबंध में कहना है कि लोगों को कानूनी अधिकार देने का उद्देश्य इस शक्ति के असंतुलन

5. आपने खाद्य सुरक्षा अधिनियम बनाने का समर्थन किया है। किंतु ऐसा माना गया है कि अधिकतम लाभ किसानों को मिलेगा तो इस राशि को, बेहतर हो, तभी खर्च किया जाए जब इसका उपयोग फसलों में सुधार और किसानों को वास्तविक लाभ देने के लिए किया जाए। इस पर बहस की जाती है कि यदि सरकार कृषि क्षेत्र में अधिक निवेश करे तो किसानों के लिए यह बेहतर होगा न कि उन्हें अनाज देने से और ऐसा करने से ही सरकार अपने सीमित संसाधनों और सीमित राशि का बेहतर ढंग से उपयोग कर पाएगी। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

सर्वप्रथम में स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम का उतना ही बड़ा आलोचक हूँ जितना बड़ा समर्थक। मैंने प्रायः इस अधिनियम का बचाव ही किया है क्योंकि यह गुमराह और गैर–सूचित आलोचना कर नियमित लक्ष्य है। किंतु, अधिनियम का विवरण वास्तव में वैसा नहीं है जैसा मैं चाहता था।

आपके प्रश्न के बारे में कहना चाहता हूँ कि इस विषय पर बहस करना कि इस राशि का उपयोग फसलों के सुधार में करना बेहतर होता, इसका अर्थ है खाद्य पात्रता के साथ खाद्य उपलब्धता की बात करना दुविधा होगी। अधिक खाद्य उपलब्धता का उपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक की गरीब आदमी इसे खरीदने की हैसियत न रखे। ध्यान रखें कि अधिकतम भारतीय किसान कमजोर और गरीब किसान हैं जो अपनी जरूरत का कुछ अनाज ही उगा पाते हैं और बाकी सारी सामग्री खरीदते हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत उन्हें खाद्य सब्सिडी मिलती है। हालांकि इसका अधिकतम किसान लाभ उठा हैं किंतु, यह भी सच है कि उनकी सहायता करने के और बेहतर उपाय भी हो सकते हैं, जैसे की बेहतर आधारभूत सुविधाएं, बिजली आपूर्ति और ऋण सुविधाएं। इस अधिनियम का विकल्प और बेहतर नहीं हो सकता है जिससे किसानों की सहायता हो सकती हो और साथ ही साथ कृषि उत्पादन में भी वृद्धि हो सकती हो।

6. क्या नकद ट्रांसफर की पद्धति खाद्य वितरण से बेहतर नहीं है, क्योंकि पहले मामले में लीकेज होने की आशंका कम है और आर्थिक सहायता तो देनी ही पडेगी, अर्थात जरूरतमंद को राशि पहुंचनी चाहिए ? क्या राशि ट्रांसफर करने की पद्धति अनाज वितरण पद्धति से अधिक कठिन है ?

निःसंदेह नकद ट्रांसफर कुछ मामलों में तो उचित है। उदाहारण के लिए मैं वृद्ध पेंशन देने के लिए नकदी को महत्व दूंगा। किंतु मैं तब तक जन वितरण प्रणाली को समाप्त करने के पक्ष में नहीं हूँ जब तक नकदी ट्रांसफर की अच्छी व कारगर पद्धति लागू नहीं होती, जो गरीबों को स्वीकार्य हो। आज अधिकतम राज्यों में कारगर नकद ट्रांसफर की पद्धति में सुधार की आवश्यकता है और विशेषकर निर्धन राज्यों में। इसी बीच में जन वितरण प्रणाली लागू है और बड़ी मात्रा में अनाज की भी उपलब्ध है। यह भी याद रखना चाहिए कि अनाज खरीद पद्धति का अपना महत्व है और खरीद स्तर पहले ही अच्छा है जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम लागू करने के लिए अपेक्षित भी है। इस अधिनियम के द्वारा उन खाद्य स्रोत्रों को बेहतर ढंग से उपयोग करने का प्रयास किया जा रहा है जो पिछले 12 वर्षों में बड़े पैमाने पर बेकार जा रहे थे। हाल ही के अध्ययन से पता चलता है कि निर्धन लोग नकद ट्रांसफर की तुलना में बेहतर ढंग से लागू जन वितरण प्रणाली को महत्व देते हैं, कम से कम वर्तमान परिस्थितियों में तो ऐसा ही है। शायद किसी दिन नकद ट्रांसफर ज्यादा अच्छा हो सकता है और यदि ऐसा हो तो यह अधिनियम खाद्य वितरण की तुलना में नकदी देने से रोकता भी नहीं है। किंतु, नकद ट्रांसफर के लिए जन वितरण प्रणाली को पहले ही समाप्त कर देना तबाही लाने जैसा हो सकता है, विशेषकर निर्धन राज्यों में।

7. क्या नकद ट्रांसफर की योजना लागू करने के लिए सहकारी संस्थाओं और सरकारी डाक विभाग का उपयोग नहीं करना चाहिए ?

डाक विभाग को उससे अन्य कार्य लिए बिना एक कारगर भुगतान एजेंसी का कार्य सौंपने का सुझाव बहुत अच्छा है। उदाहरण के लिए गांव के डाकघर राष्ट्रीयकृत बैंकों के भुगतान काउंटर के रूप में कार्य कर सकते हैं। ऐसा करने से डाक विभाग को नया कारोबार मिलेगा और गांववासियों को उचित लागत पर अति महत्वपूर्ण सेवा भी मिल जाएगी। उदाहरण के लिए ऐसा करने से नरेगा वेतन और सामाजिक सुरक्षा पेंशन की समयबद्ध और पारदर्शी भुगतान सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी। इसके लिए गांव के डाकघरों को आधुनिक बनाना होगा, किंतु दुर्भाग्यवश अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी जन नीतियां प्राइवेट कारोबारियों के हितों से प्रभावित हैं। डाकघर, एक सार्वजनिक संस्था, को आधुनिक बनाने का कार्य कार्पोरेट एजेंडा का भाग नहीं है। इसके स्थान पर बाजार आधारित मॉडल्स को बढ़ाने का दबाव है जैसे कि 'बिजिनैस कॉरेंसपौंडेंट' मॉडल।

8. सामान्यतः यह विचार है कि यदि नकद सब्सिडी को सब्सिडी देने का आधार माना गया था तो भारत पर इस बात का दबाव नहीं होना चाहिए था कि वह विश्व व्यापार संगठन (डबल्यू.टी.ओ.) की बाली में हुई बैठक में शांति सौदे (पीस डील) पर हस्ताक्षर करता। क्या भारत सरकार ने विश्व व्यापार संघ में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वार्तालाप के दौरान खाद्य सुरक्षा अधिनियम को अंतिम रूप देने से पहले गंभीरता से विचार किया था ?

विश्व व्यापर संगठन के साथ होने वाली भारतीय कठिनाईयों को खाद्य सुरक्षा अधिनियम से कुछ लेना देना नहीं है। विकासशील देशों को तो वे वादे भी पूरे करने थे जो उचित नहीं थे जैसे कि भारत के वादे, जिनका पिछले कई वर्षों से भारत उल्लंघन कर रहा था। खाद्य सुरक्षा अधिनियम के बिना भी स्थिति वैसे ही होती।

9. आप ऐसा कैसे मानते हैं कि कुछ चुनी हुई या लक्षित अनाज देने की योजनाओं की तुलना में भारत की संपूर्ण जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा प्रावधानों को व्यापक रूप में लागू करना बेहतर होगा ?

लक्षित, विशेषकर गरीबी रेखा पर आधारित योजनाओं की दो प्रमुख रूकावटें हैं। सबसे पहले, लक्षित परिवारों की पहचान करना विश्वसनीय नहीं हैं, जिस कारण कई लोग छूट सकते हैं। खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में, जिसे सभी नागरिकों का मौलिक अधिकार भी कहा गया है, एक गंभीर समस्या है। दूसरा, लक्ष्य निर्धारित करना विभाजन करना जैसा है। ऐसा करने से कारगर जन सेवाओं पर लोगों का लाभ कम हो जाता है जो कुछ सीमित लोगों तक ही पहुंच पाता है और वे शक्तिहीन भी हो जाते हैं। ये दोनों रूकावटें जन वितरण पद्धति के संदर्भ में सामने आई हैं। तमिलनाडु और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में, जहां पर जन वितरण प्रणाली व्यापक रूप में या कम व्यापक रूप में है, ये कार्य बहुत अच्छे ढंग से किए गए हैं जबकि लक्षित पद्धति वाले राज्यों में उतना बेहतर नहीं हुआ है। निःसंदेह व्यापक कार्यक्रम लागू करने में बहुत खर्चा आता है। किंतु, मैं महसूस करता हूँ कि कम से कम ग्रामीण क्षेत्रों में तो, विशेषकर निर्धन राज्यों में, अधिक लागत का औचित्य है क्योंकि लोगों के जीवन में खाद्य सुरक्षा का बहुत महत्व है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां तक कि अमीर परिवारों में भी लोग काफी असुरक्षा की स्थिति महसूस करते हैं क्योंकि उन्हें किसी भी दिन फसल खराब होने, बीमारी, बेरोजगारी, शोषण और अन्य अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ सकता है। आप देख सकते हैं कि उन राज्यों में लोगों के जीवन में जन–वितरण प्रणाली से व्यापक राहत मिली है जहां पर यह व्यवस्था पहले से लागू थी। कई अन्य संदर्भों में भी व्यापक योजनाओं का काफी महत्व है जैसे परिपूरक शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं, विद्यालयों में खाना और रोजगार की गारंटी। इनके लाभ स्पष्ट रूपों में देखे जा सकते हैं न केवल अन्य देशों के अनुभव से, जैसे यूरोप के देशों में, जहां पर कल्याण कार्यों की सफलता व्यापक योजनाओं के सिद्धांत पर निर्भर है, किंतु, भारतीय राज्यों जैसे तमिलनाडु में भी इनके लाभ सराहनीय हैं। लक्षित नीतियों को कुछ परिस्थितियों में तो उचित माना ही जा सकता है, विशेषकर निर्धन देशों में जहां पर सरकारी आय बहुत कम होती है। किंतु, जैसे–जैसे जन संसाधनों का विस्तार होता जाता है, जैसा भारत में हो रहा है, वैसे–वैसे व्यापकता के सिद्धांत का अधिक उदार रूप में उपयोग किया जा सकता है।

10- आप राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के सदस्य थे। इस निकाय ने कैसे काम किया और नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने में यह कितनी कारगर थी, इस संबंध में आपका क्या विचार है ? क्या आप राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् कार्य करने के ढंग से निराश थे ?

राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् एक अस्थायी व्यवस्था थी जो परिस्थितियों के अनुसार अच्छे कार्य और कुछ नुकसान करने में सक्षम थी। यूपीए–1 सरकार की सत्ता के दौरान राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् का सामाजिक नीतियों में महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें शक्ति जैसी कोई बात नहीं थी जैसा आलोचक दावा करते हैं, बल्कि इसके पास बहुत अधिक शक्तियां थी जो सरकार की सुगम नीति के बल पर परिषद् की सलाह को मानती थी। इस परिषद् की शक्तियों का दुरूपयोग नहीं किया गया क्योंकि राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् एक ठोस फ्रेम वर्क में काम कर रही थी अर्थात नेशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम के अंतर्गत। अपने फ्रेम वर्क में रहकर इसने

कई अच्छे कार्य भी किए जैसे सूचना के अधिकार का अधिनियम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम तैयार करना तथा अन्य नए सुझावों का भी समर्थन किया जैसे वन अधिकार अधिनियम एंव बाल पौष्टिकता कार्यक्रम। यूपीए–II सरकार के राज में राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् अधिक उपलब्धियां प्राप्त नहीं कर पाई। तब तक सरकार तैयार हो चुकी थी और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् को कैसे हटाना है यह जान चुकी थी – चाहे अच्छा या बुरा। यूपीए–II संगठन में लैफ्ट पार्टियां न होने से भी सरकार को दृढ़ रहने में सहायता मिली। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् की अधिकतम सिफारिशों को नजरअंदाज, कम या विलंब किया गया। किंतु, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम को छेड़ा नहीं गया क्योंकि इसके लिए चुनावी घोषणा की गई थी कि इसे नहीं हटाया जाएगा और न ही इसे दबाया जा सका। यद्यपि इस अधिनियम के अंतर्गत इसकी जिम्मेवारियों को कम करने का पूरा प्रयास किया गया।